हमें तेल कैसे मिला?

आइज़क एसिमोव

हिन्दी अनुवादः सतीश कुमार जैन

हमें तेल कैसे मिला?

आइजक एसिमोव

हिंदी अनुवाद: श्री सतीश कुमार जैन

हाइड्रोकार्बन का परमाणु - आक्टेन

आइजक एसिमोव एक कुशल कथाकार हैं व अपनी विज्ञान कथाओं के लिए विश्व विख्यात हैं। वे वैज्ञानिक इतिहास के विकास के भी एक प्रख्यात विशेषज्ञ हैं। उन्होंने गैर-विशेषज्ञों - जवान और बूढ़ों दोनों के लिए विज्ञान के चमत्कारों को समझना आसान बनाया है। अक्सर लोग मौजूदा ऊर्जा संकट के बारे में चिंता करते हैं। वे एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछते हैं - तेल के वर्तमान भंडार कब खत्म होंगे? इसका उत्तर जानने से पहले हमें यह जानेंगे कि आखिर तेल क्या है? और तेल इतना महत्वपूर्ण क्यों है? तेल कहां से आता है और उसके बारे में हमें कैसे पता चला? तेल के कुएं सूख जाने पर हम क्या करेंगे?

इस पुस्तक में आइजक एसिमोव हमें तेल की खोज के विकास के बारे में बता रहे हैं और साथ-साथ कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर भी दे रहे हैं।

तेल की उत्पत्ति

करोड़ों वर्ष पहले साधारण जीव समुद्र में रहते थे। तब वहां कोई मछली - कॉड, शार्क और झींगा मछलियां नहीं थीं। उस काल में समुद्र में एक-कोशीय वनस्पतियां और जीव बहुत अधिक संख्या में थे।
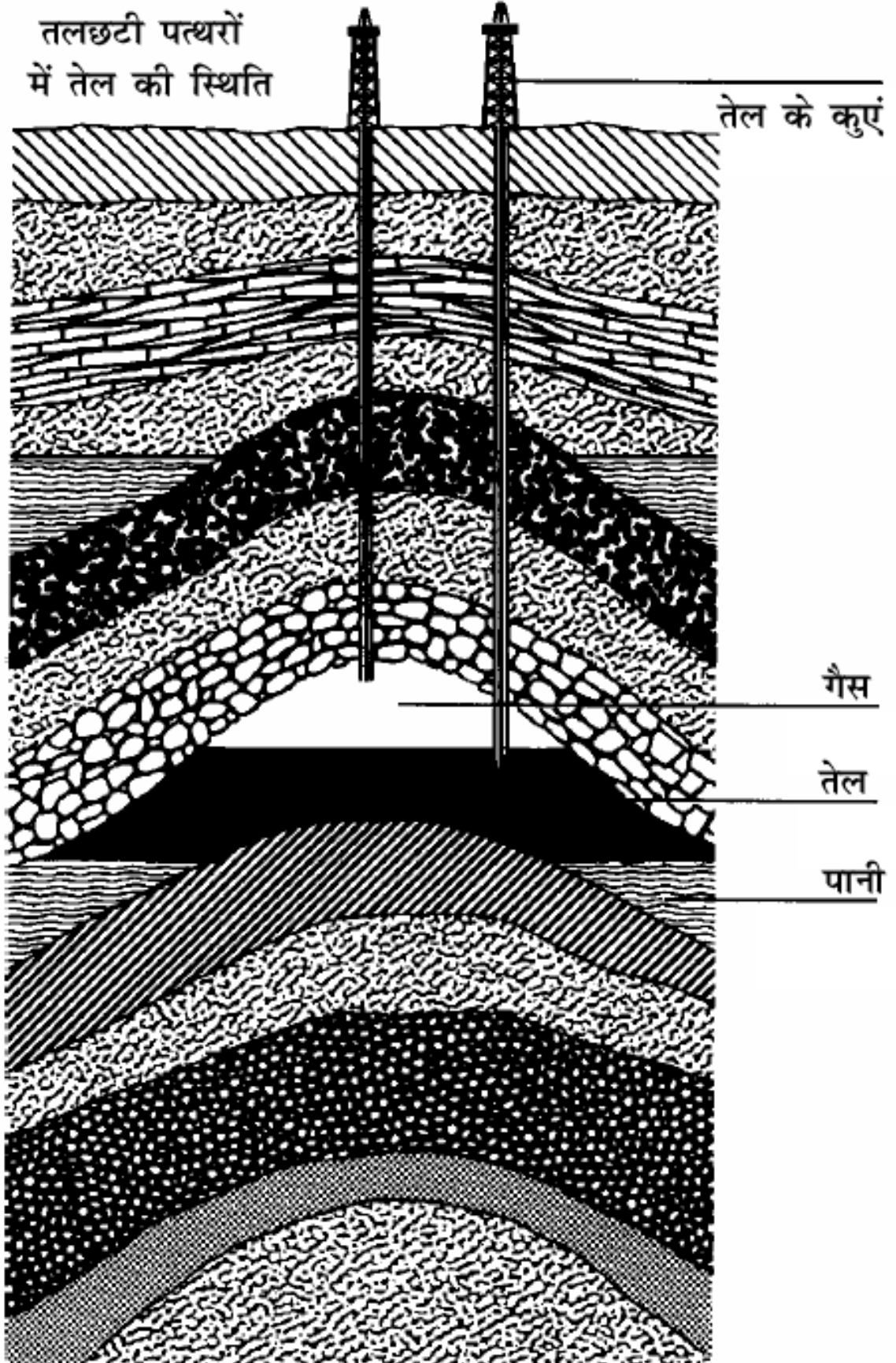
इन एक-कोशीय जीवों और वनस्पतियों में इंसानों जैसे ही वसा होता था। वसा यानि तेल तीन प्रकार के अणुओं - कार्बन, हाईड्रोजन और आक्सीजन का बना होता है।

वसा के अणु एक-दूसरे से चिपककर एक छोटी सी रचना बनाते हैं जिसे परमाणु कहते हैं। वसा या तेल का एक परमाणु, कार्बन के अणुओं की श्रृंखला से बना होता है। यह श्रृंखला छोटी (4)अणुओं, या लम्बी (24)अणुओं तक की हो सकती है। हाईड्रोजन के अणु प्रत्येक कार्बन के अणु से जुड़े होते हैं। हाईड्रोजन के अणु कार्बन के अणुओं से लगभग दो-गुने लम्बे होते हैं। संरचना की एक किनार पर दो आक्सीजन के अणु भी होते हैं।

एक-कोशीय जीव जब दूसरे को खाते हैं तो वह पच जाता है। इससे परमाणु अलग-अलग खिंचते हैं और फिर उनके टुकड़े अलग-अलग तरह से जुड़ते है। इससे वसा के नए परमाणु बनते हैं।

कभी-कभी एक-कोशीय जीव बिना किसी को खाए मर जाते हैं। तब उनके अवशेष अन्य जीवों द्वारा खा लिए जाते हैं।

इस प्रकार परमाणु अलग होकर पुनः जुड़ते हैं। जीवित चीजें खुद खाती हैं और खाई भी जाती हैं। कुछ मर जाती हैं तो कुछ बच जाती हैं पर उनके निर्माण में बार-बार वही पुराने अणु काम आते हैं।

जब कोई कोशिका मरती है तब वो समुद्र की तलहटी में जाकर बैठ जाती है। वो खाए जाने से पहले रेत की तह से ढंक जाती है और वहीं पड़ी रहती है। इस परिस्थिति में परमाणु अलग होने के बाद धीरे-धीरे एक होते हैं। रेत के नीचे गर्मी, दबाव या किसी रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण बदलाव होता है। यह प्रक्रिया जीवित कोशिकाओं से भिन्न होती है।

एक बदलाव में वसा के परमाणु भाग लेते हैं। इसमें वसा परमाणु चेन के एक ओर लगे दोनों आक्सीजन परमाणु अलग हो जाते हैं और फिर बची हुई कार्बन की चेन केवल हाईड्रोजन के अणुओं के साथ जुड़ी रह जाती है। अब बचा हुआ पदार्थ केवल हाईड्रोजन और कार्बन के अणुओं का बना होता है जो हाईड्रोकार्बन कहलाता है।

कुछ कार्बन की चेनें टूट जाती हैं जिससे उनमें अब 3, 2 या केवल 1 कार्बन के अणु ही बचते हैं। उनमें दूसरी कार्बन की चेनें जुड़ जाती हैं जिससे कार्बन की एक लम्बी चेन बन जाती है।

कई बार कुछ परमाणु के टुकड़े कहीं और से आ जाते हैं। कार्बन के अणु तो वहां पहले से ही मौजूद होते हैं। साथ में नाईट्रोजन और गंधक के अणु भी होते हैं। अक्सर दबी हुई कोशिकाएं अलग-अलग प्रकार के हाईड्रोकार्बन में बदल जाती हैं।

अलग-अलग हाईड्रोकार्बन की प्रकृति उनकी कार्बन चेन की लम्बाई पर निर्भित करती है। जिस हाईड्रोकार्बन के परमाणु में केवल एक से चार कार्बन अणु होंगे वो गैस होगी। एक खुली बोतल में रखने पर यह पदार्थ बिल्कुल हवा जैसा लगेगा। यह गैस बोतल से बाहर निकलकर हवा में घुल जाएगी।

जिन परमाणुओं में 5 या उससे अधिक कार्बन के अणु होंगे वो द्रव्य की दशा में होगा। बोतल में रखने पर यह बिल्कुल पानी जैसा दिखेगा। इसकी गंध पानी से अलग होगी। इस प्रकार के हाईड्रोकार्बन द्रव्य का जल्दी से वाष्पीकरण होगा। यानि प्लेट में रखने पर वो जल्द ही गैस बनकर हवा में मिल जाएगा। अगर इस द्रव्य को धीरे-धीरे गर्म करें तो वो बहुत जल्दी गैस बनकर उड़ जाएगा।

अगर हाईड्रोकार्बन के द्रव्य को गर्म करें तो एक विशेष तापमान पर यह द्रव्य उबलने लगेगा। इस तापमान को उबलने का बिन्दु कहते हैं।

जिस हाईड्रोकार्बन में कार्बन की जितनी लम्बी चेन होगी उसका उबलने का बिन्दु भी उतना ही ऊंचा होगा। बहुत छोटी कार्बन चेन वाले हाईड्रोकार्बन का उबलने का बिन्दु बहुत कम होगा - शायद पानी के जमने के तापक्रम से भी कम। इस प्रकार के छोटी कार्बन चेन वाले हाईड्रोकार्बन के परमाणु गैस की दशा में होते हैं।

लम्बी कार्बन चेन वाले हाईड्रोकार्बन द्रव्य होने के साथ-साथ मुलायम ग्रीस की तरह से काले व चिपचिपे ठोस होते हैं। गर्म करने पर वे तुरन्त ठोस से द्रव्य में बदल जाते हैं।

आप सोचेंगे कि अगर इन हाईड्रोकार्बन को और गर्म किया गया तो वे उबल कर गैस बन जाएंगे। पर वास्तव में यह हाईड्रोकार्बन गर्म करने से टूटकर छोटी चेन के परमाणु बन जाते हैं।

जब जीवित कोशिकाएं रेत और अन्य चट्टानों के नीचे दबती हैं तब वहां गैस, द्रव्य और ठोस का एक मिश्रण बनता है। धीरे-धीरे यह मिश्रण नीचे की ओर रेत और रोड़ी के नीचे दबता है। इस दबी हुई रेत और रोड़ी को सेडीमेंट कहते हैं। जब रेत और अन्य पदार्थों की तह बहुत मोटी हो जाती है तो वो अपने ही वजन से दबकर सेडिमेंटरी यानि तलछटी पत्थर बन जाती है।

साधारणतः यह पत्थर समुद्र के किनारे पर बनते हैं। जैसे-जैसे समय गुजरता जाता है वैसे-वैसे इस पत्थर की मोटाई भी ऊंची होती जाती है और तब समुद्र में से एक सूखी चट्टान ऊपर उठती है और समुद्र दूर चला जाता है। पर इन सूखी चट्टानों में भी हाईड्रोकार्बन होते हैं।

हाईड्रोकार्बन का यह तेलयुक्त, चिकना मिश्रण रॉक-तेल कहलाता है। वनस्पतियों में अन्य प्रकार का तेल होता है जैसे जैतून का तेल (ऑलिव आइल) होता है। रॉक-तेल को हम पेट्रोलियम कहते हैं। यह शब्द लैटिन भाषा से आया है।

2 पूर्व में तेल के उपयोग

जिन तलछटी पत्थरों में पेट्रोलियम पाया जाता है वहां की रेत और रोड़ी में बहुत सारे छोटे-छोटे रिक्त स्थान होते हैं जिनमें हवा भरी होती है। जब यह तलछटी पत्थर पानी में डूबे होते हैं तो उन हवा के स्थानों में पानी भर जाता है।

जब तलछटी पत्थर सूखे स्थान पर होते हैं तो भी यह समुद्र के स्तर से काफी नीचे होते हैं जहां इनके चारों ओर पानी होता है। साधारणत: जमीन में नीचे के स्तर पर पानी होता है। इसी प्रकार लोग कुंआ खोदकर पीने का पानी पाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि सूखी जमीन के नीचे तलछटी पत्थरों में हवा के जो छोटे-छोटे छिद्र होते हैं वे पानी से भर जाते हैं। पानी जैसे ही तेल भी इन छिद्रों में इकट्ठा हो जाता है। पर क्योंकि तेल हल्का होता है इसलिए वो पानी के ऊपर तैरता है। जैसे-जैसे चट्टानें और अधिक पानी सोखती हैं वैसे-वैसे तेल और ऊपर की ओर तैरता है और अंत में वो सतह पर आ जाता है।

जब ऐसा होता है तो हाईड्रोकार्बन में जो गैसें होती हैं वे निकल कर हवा में मिल जाती हैं। बची हुई वस्तु एक मुलायमदार व लेपदार काला ठोस होती है। इस वस्तु को कई नामों से जाना जाता है।

उनमें एक नाम है एश्फाल्ट। एश्फाल्ट, डेड-समुद्र के किनारे बहुतायत में पाया जाता है। इसलिए लोग इसे 'लेक-एश्फाल्ट' भी कहते हैं। इसका एक अन्य नाम 'बिट्युमिन' भी है परन्तु सबसे प्रचलित नाम 'पिच' है। आम भाषा में हम इसे कोलतार कहते हैं।

मध्य-पूर्व एशिया में लोग प्राचीन काल से 'पिच' का ही उपयोग कर रहे हैं। पिच चिपचिपा होता है और वो पानी में घुलता नहीं है। अगर लकड़ी पर 'पिच' को पोत दिया जाए तो लकड़ी वॉटरप्रूफ हो जाती है।

इसी कारण पिच जहाज निर्माण में बहुत उपयोगी पाया गया। जहाज में लकड़ी के तख्तों के बीच की झिरियों में पिच को भर दिया जाता था। उससे जहाज में पानी का रिसाव रुक जाता था। बाईबिल में भी पिच का उल्लेख है। नोहा को जहाज बनाते समय भगवान ने हिदायत दी - जहाज पर अंदर और बाहर से पिच लगाना।

बगदाद में बांस की बनी नावों को वाटरप्रूफ बनाने के लिए एश्फैल्ट पोतते लोग

जब मोजिज का जन्म हुआ तो उनकी मां ने उसे छिपा दिया क्योंकि फेयरो ने सारे यहूदी लड़कों को मार डालने का हुक्म दिया था। उन्होंने मूंज की घास की एक नाव बनाई और उसमें नवजात शिशु को रखकर नदी में बहा दिया। उन्हें उम्मीद थी कि किसी मिस्त्रवासी को बच्चा मिलेगा और वो उसकी देखभाल करेगा। अगर नाव केवल घास की बनी होती तो वो अवश्य डूब जाती। इसलिए उन्होंने नाव पर 'पिच' लगाकर उसे वॉटरप्रूफ बनाया था।

पिच के अन्य उपयोग भी थे। प्राचीन काल में खेतों की सिंचाई के लिए पास की नदियों से नाली द्वारा खेतों तक पानी लाया जाता था। इससे बारिश के बाद भी फसलों को हरा-भरा रखा जा सकता था। पर रेत की बनी नालियों में से पानी आसानी से रिस जाता। इसलिए इन नालियों के पेंदे पर घास बिछाई जाती और उस पर पिच का लेप किया जाता था। पिच से नाली वॉटरप्रूफ बन जाती थी।

बारिश के दिनों में नदियां उफान पर होतीं और पानी से चारों और दलदल बन जाता। नदियों पर अगर सिर्फ रेत की मेढ़ें बनाई जातीं तो वो जल्दी टूट कर बह जातीं। पर पिच और रेत की मेढ़ें काफी टिकाऊ और वॉटरप्रूफ होतीं।

पिच का इस्तेमाल अक्सर सीमेंट की तरह ईंटें जोड़ने, धातु के ब्लेड को हैंडिल से जोड़ने या दीवार पर टाइल्स लगाने के लिए भी किया जाता।

1400-1500 में जब योरूपीय लोगों ने दुनिया की खोज शुरू की तो उन्हें अनेक स्थानों पर पिच मिला।

क्यूबा, पूर्वी मेक्सिको, दक्षिणी अमरीका के पश्चिम तट पर भी पिच पाया जाता है। 1600 के आसपास सर वाल्टर रैले को दक्षिणी अमरीका के पास ट्रिनिडाड द्वीप के पास एक पिच की झील मिली। उन्हें इंडोनेशिया के द्वीपों पर और न्यूयार्क और पेनसिल्वेनिया में भी पिच का रिसाव दिखाई पड़ा।

पिच बेहद कीमती था क्योंकि उसे नावों के जोड़े भरने के काम में लाया जाता था। पिच से नाव के अंदर पानी रिसकर नहीं आता था। नोहा ने भी वही किया था।

कभी-कभी पिच का दवाई के रूप में भी उपयोग होता था। अक्सर उसे क्रीम जैसे जख्मों पर लगाया जाता था। पिच से कम-से-कम कीड़े-मकौड़ों तो दूर रहते थे।

कभी-कभी पिच को निगला जाता था क्योंकि उससे पेट साफ रहता था। आजकल भी कुछ-कुछ ऐसा ही किया जाता है, पर वर्तमान में पेट्रोलियम को अच्छी तरह साफ किया जाता है। पेट्रोलियम से एक पारदर्शी तरल निकलता है जिसे 'मिनरल आईल' कहते हैं। पेट्रोलियम के हाईड्रोकार्बन हवा की आक्सीजन के साथ जलते हैं। हाईड्रोकार्बन की हाईड्रोजन, हवा की आक्सीजन से मिलकर पानी बनाती है। और कार्बन आक्सीजन से मिलकर कार्बनडाईआक्साइड बनाती है। जब

हाईड्रोकार्बन गैस के रूप में होता है तो वो हवा में बड़ी आसानी से मिलकर आग पकड़ लेता है। द्रव्य की दशा में हाईड्रोकार्बन के वेपर हवा में मिलकर आग पकड़ लेते हैं तथा जलने लगते हैं। इससे हाईड्रोकार्बन के और अधिक वेपर बनने लगते हैं और वे जल्दी-जल्दी जलने लगते हैं। हाईड्रोकार्बन जितना छोटा होता है वो उतने ही अधिक वेपर पैदा करता है और ज्यादा ज्वलनशील होता है।

असल में हाईड्रोकार्बन बहुत तेजी से जलते हैं। कभी-कभी जब बहुत सारी गैस एक साथ मिलकर जलती है तो धमाका भी हो जाता है।

पेट्रोलियम जलता है? यह लोगों को कैसे पता चला। शायद यह लोगों को किसी दुर्घटना के बाद ही पता चला होगा। मध्य-पूर्व में ऐसे कई स्थान हैं जहां पर हाईड्रोकार्बन रिसकर सतह पर आ जाते हैं और वहां गैस का रूप लेते हैं। अगर कोई उसके आसपास अलाव जलाए तो वहां जरूर विस्फोट होगा और हवा में ऊंची लपटें उठें जिससे लोग अवश्य घबरा जाते।

यह आग बुझती नहीं पर लगातार जलती रहती थी।

यह बात लोगों को बहुत असाधारण लगती। चूंकि आमतौर पर जब आग जलाई जाती है तो उसे लगातार ईंधन की जरूरत होती है। ईंधन न मिलने पर आग बुझ जाती है। जब बिना ईंधन के यह आग दिनों-दिन जलती रहती तो लोगों को आश्चर्य होता।

लागों को जरूर यह एक जादू लगा होगा। बाईबिल में भी एक झाड़ी जलने की कथा है जो शायद इसी प्रकार की आग से प्रेरित हुई होगी।

प्राचीन ईरान के एक धर्म में लगातार अग्नि के जलते रहने का विशेष महत्व था। इसीलिए ईरान के लोगों को 'अग्नि पूजक' माना जाता था।

दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि कुछ लोग इस लगातार जलती रहने वाली आग से डर गए हों और वो इसे भूत-प्रेतों की उपज मानते हों। शायद उन्होंने सोचा हो कि पृथ्वी के नीचे भी शाश्वत आग का क्षेत्र है जो कभी रिसकर (लीक होकर) सतह पर ज्वालामुखियों के रूप में आता है। ज्वालामुखियों के कारण ही लोगों ने माना होगा कि धरती के नीचे नरक है और वहां मृतकों की आत्माएं वास करती हैं।

कभी-कभी पिच के ढेर में एक पारदर्शी तरल भी मिलता था जो आसानी से जलता था। ईरानवासियों ने उसे 'नेफ्ट' यानि तरल का नाम दिया। बाद में ग्रीकवासियों ने उसे 'नेप्था' के नाम से बुलाया।

लोग ज्वलवनशील तरल पदार्थों से अवगत थे। यह तरल आसानी से जीव-जगत में पाए जाते थे। उदाहरण के लिए वनस्पति तेलों को दियों में जलाया जाता था। इसके लिए तेल में एक मोटी 'बाती' तैराई जाती थी। या फिर तेल को एक केतली जैसे बर्तन में रखा जाता था जिसके मुंह से बाती निकलती थी। बाती तेल को सोख लेती थी और उसे जलाने पर ऊष्मा से तेल का वाष्पीकरण होता और

वो जलता। उसकी लौ हवा में इधर-उधर थिरकती। बाती तब तक जलती जब तक तेल खत्म नहीं हो जाता।

पिच से प्राप्त तेल भी वनस्पति और पशुओं से प्राप्त तेलों जैसा था। इस वास्तविकता ने लोगों को जरूर आश्चर्यचकित किया होगा। इसमें लोगों को एक अलौकिक शक्ति दिखाई दी होगी। इसलिए उससे धार्मिक पवित्र ज्योति को जलाया गया जिसकी लोग पूजा करते थे।

यहूदियों की एक धार्मिक पुस्तक है - मैकेबीज जिसे ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में लिखा गया था। इस कथा में सोलोमन के मूल मंदिर में आग जलने का उल्लेख है।

शोधकर्ताओं को वहां पर आग तो नहीं परन्तु एक गाढ़ा द्रव्य अवश्य मिला। पुजारियों से इस द्रव्य को लकड़ियों पर छिड़कने का कहा गया। तब एक आग की बड़ी ज्वाला जली जो सभी को बहुत अच्छी लगी। पहले अध्याय के अंत में इस द्रव्य को नेप्था कहा गया।

कभी-कभी पिच के ठोस हिस्से को भी जलाया गया। वो धीरे-धीरे जलता - हल्के-हल्के सुलगता और उसमें से लपटें नहीं निकलतीं। उसका भी कुछ उपयोग था।

साधारणतः ऐसी आग का धुंआ बदबूदार और दम घोटने वाला होता है। आप पिच को एक धातु के बर्तन में रखकर बंद कमरे में जला सकते हैं। लोग इस बदबूदार घर को छोड़कर चले जाएंगे। यदि कमरे में तिलचट्टे, चूहे आदि हों तो वो पिच की बदबूदार गैस से भाग जाएंगे। इससे अब कमरा लोगों के रहने के लिए साफ और स्वच्छ हो जाएगा यानि -फ्यूमिगेट हो जाएगा।

कुछ लोगों को लगा कि फ्यूमिगेशन से बीमारी लाने वाली प्रेतआत्माओं को भी भगाया जा सकेगा। घर में अगर कोई बीमार होता या किसी की मृत्यु होती तो घर को फ्यूमिगेट किया जाता जिससे घर बाकी सदस्यों के लिए सुरक्षित बना रहे।

3 तेल का जलना

जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ी, आबादी बढ़ी, वैसे-वैसे लोगों की आग की जरूरतें भी बढ़ीं। जैसे-जैसे शहर बड़े होते जा रहे हैं, वैसे-वैसे खाना पकाने, धातु, कांच और बर्तन निमार्ण के लिए आग की जरूरतें बढ़ रही हैं।

एक लम्बे अर्से तक लकड़ी को ईंधन की तरह प्रयोग किया जाता रहा। 1600 की शुरुआत से कोयले का प्रयोग होने लगा। (कोयला काला और ठोस होता है और पूर्णतः कार्बन के अणुओं से बनता है। करोड़ों सालों जंगलों के जमीन के अंदर दबे रहने के बाद ही कोयला बनता है। पर यह एक अगल कहानी है)।

आग का उपयोग प्रकाश के लिए भी होता है। यूरोप में सर्दी की रातें 15-16 घंटे लम्बी होती हैं। पर लोग इतनी लम्बी देर तक सो नहीं सकते। अंधेरे में बैठकर लोग ऊब जाते इसलिए उन्हें प्रकाश की जरूरत पड़ी। और जलते अलाव से दूर अंधेरे में तो प्रकाश की आवश्यकता और बढ़ जाती।

आप जलते अलाव को तो यहां से वहां ले नहीं जा सकते हैं। हां, आप मशाल के साथ ऐसा कर सकते हैं। मशाल लकड़ी की एक छड़ी हो सकती है जिसका एक सिरा तेल में भीगा हो। आप जानवरों की चर्बी या मोम की बनी मोमबत्ती भी उपयोग में ला सकते हैं। या फिर आप वनस्पतिओं के तेल से जलने वाले दिए इस्तेमाल कर सकते हैं।

जैसे-जैसे शहरों का विकास हुआ और आबादी बढ़ी वैसे-वैसे अधिक प्रकाश की आवश्यकता भी बढ़ी। शहरों में सुरक्षा के लिहाज से सारी रात भर सड़कों को रोशन करना जरूरी हो गया।

पर इतनी अधिक संख्या में टार्च और मोमबत्तियां जलाने के लिए चर्बी और तेल कहां से आएगा?

1600 और 1700 ईसवीं में महासागरों में बड़ी व्हेलों का शिकार हुआ। व्हेलें गर्म खून की प्राणी होती हैं और उनकी त्वचा के नीचे चर्बी की एक मोटी तह होती है जो उनकी ठंडे ध्रुवीय पानी से सुरक्षित रखती है। इस चर्बी से बहुत मात्रा में 'व्हेल आईल' प्राप्त होता था जो लैम्पों में प्रयोग होता था।

परन्तु व्हेलों का शिकार हमेशा के लिए तो सम्भव नहीं था। 300 सालों के शिकार के बाद व्हेलों की कुछ प्रजातियां तो सदा के लिए लुप्त हो गईं। जहाजों को व्हेल पकड़ने के लिए अंटार्कटिक में बहुत जोखिम भरी यात्रा करनी पड़ती थी। यह स्पष्ट हो गया कि लैम्प जलाने के लिए व्हेल-आईल अधिक समय तक नहीं बचेगा।

कोयले की स्थिति क्या थी? ऐसा लगता था कि जमीन के नीचे कोयले के अथाह भंडार हैं तो कभी खत्म नहीं होंगे। कोयले को एक विशेष तरह से गर्म किया जा सकता था जिससे कि वो जले नहीं परन्तु वाष्प में बदल जाए और उससे

‘कोल-गैस’ बन जाए। इस कोल-गैस को एकत्रित कर पाइपों के जरिए इधर-उधर ले जाया जा सकता था और उसे लैम्पों में जलाया जा सकता था। कोल-गैस के जेट को जलाकर पीले रंग का प्रकाश प्राप्त किया जा सकता था। स्काटलैंड के आविष्कारक विलियम मुरडौक ने सबसे पहले यह प्रयोग किया। उनका एक कारखाना था जिसमें वो भाप के इंजन बनाते थे। 1803 में उन्होंने अपनी फैक्ट्री को कोल-गैस से रोशन किया। 1807 में लंदन की कुछ सड़कें भी इसी तरह से रौशन की गईं। उसके बाद से कोल-गैस का उपयोग काफी फैला।

कोयले को एक विशेष प्रकार से गर्म करने पर न केवल कोल-गैस मिलती पर साथ में एक काले रंग का गाढ़ा अवशेष भी बचता जो कोलतार कहलाता। जब कोलतार को एक उपयुक्त दशा में गर्म किया जाता है तो उससे एक पारदर्शी द्रव्य भी प्राप्त होता है।

यह द्रव्य हाईड्रोकार्बन का मिश्रण होता है। उसमें मौजूद छोटे हाईड्रोकार्बन जल्दी ही वाष्पीकृत हो जाते। पर वो लैम्पों के लिए उपयोगी नहीं थे। वो बहुत तेजी से जलते और विस्फोट भी होते। लैम्पों के लिए बड़े हाईड्रोकार्बन उपयुक्त थे। वे धीरे-धीरे वाष्पीकृत होते और अच्छी तरह से लैम्पों में जलते। कोयले से प्राप्त यह तरल कोल-आईल कहलाता।

अक्सर इस प्रकार का तेल शेल-चट्टानों से भी प्राप्त होता है। इस प्रकार की चट्टाने आईल-शेल कहलाती हैं। शेल से प्राप्त हाईड्रोकार्बन मुलायम होता है और मोम की भांति महसूस होता है। गर्म करने से यह द्रव्य में बदल जाता है और फिर इसे लैम्प में जलाया जा सकता है।

1850 में अमरीका और यूरोप में लैम्पों को कोल-आईल यानि केरोसीन (मिट्टी के तेल) से जलाया जाता था। इसे पैराफिन आईल के नाम से भी जाना जाता है।

सन 1859 में एक रेल कंडक्टर ने एक बिल्कुल नया इजाद किया। उनका नाम इडविन लौरिंटाइन ड्रेक था और उस समय उनकी उम्र 40 साल की थी। क्या लैम्पों को जलाने के लिए कोयले या शेल से बेहतर कोई अन्य ईंधन हो सकता है? कोयला और शेल दोनों ही ठोस पदार्थ थे जिन्हें जमीन के अंदर से खोदकर निकालना पड़ता था, फिर उसे बड़ी मुश्किल से तोड़कर उनका द्रव्य बनाया जाता था।

कितना अच्छा हो अगर कोई तरल ईंधन मिल जाए? ऐसा ईंधन जिसे इधर-उधर ले जाना आसान और सस्ता होगा।

यह तरल ईंधन किस प्रकार का होगा इसका भी ड्रेक को अच्छा अंदाज था क्योंकि उसने पेनसिल्वेनिया रॉक आईल कम्पनी में काफी पूंजी लगाई थी। यह कम्पनी पेनसिल्वेनिया में जमीन पर रिसकर आए तेल को इकट्ठा करने का काम करती थी। यह इलाका न्यूयार्क स्टेट का उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र है और पिट्सबर्ग शहर

के उत्तर में 145-किलोमीटर दूरी पर स्थित है।

कम्पनी इस तेल से केवल दवाईयां बनाने का कारोबार करती थी। रिसे तेल की मात्रा दवाईयों के लिए तो पर्याप्त थी परन्तु दुनिया के लैम्पों को जलाने के लिए नगण्य थी। हो सकता है जमीन के नीचे पर्याप्त मात्रा में तेल मिले?

लोग अक्सर गहरे कुएं खोदते थे। पीने के पानी के लिए कुएं खोदना आम बात थी। कभी-कभी खारे पानी के लिए बहुत गहरे कुएं खोदे जाते थे और इस नमकीन पानी से खाद्य पदार्थों का संरक्षण किया जाता था।

कभी-कभी खारे पानी के कुएं खोदते वक्त नमकीन पानी के साथ-साथ तेल भी बाहर निकल आता था। कुछ रिपोर्टों के अनुसार चीन और बर्मा में ऐसा 2000 वर्ष पहले हुआ था। जब खारे पानी के साथ-साथ तेल बाहर आया तो चीनवासियों ने उन कुओं में आग लगा दी। और उस आग से उन्होंने खारे पानी से ठोस नमक बनाने का काम शुरू किया।

ड्रेक को खारे पानी के कुएं खोदने की पद्धति के बारे में पता था। एक पद्धति में एक छेनी को केबिल से छेद में लटकाकर पत्थर को तोड़ा जाता। फिर टूटे पत्थरों को बाहर निकालकर इसी प्रक्रिया को दोहराया जाता।

ड्रेक ने इसी पद्धति का उपयोग कर टिटसुवल स्थान पर 28 अगस्त 1859 को धरती में 21-मीटर गहरा कुंआ खोदा और वहां तेल पाया। कुंए से प्रचुर मात्रा में तेल को पम्प करके ऊपर लाया जा सका। यह मात्रा रिसे तेल को एकत्रित करने से कहीं अधिक थी। इस प्रकार ड्रेक ने दुनिया का पहला तेल का कुंआ खोदा।

उसके बाद तो उस स्थान पर तेल के कुएं खोदने वालों का तांता लग गया। उत्तरी-पश्चिमी पेनसिल्वेनिया दुनिया का पहला तेल क्षेत्र बना और उसके बाद वहां बहुत लोगों आकर बसने लगे। ड्रेक ने अपनी पद्धति का पेटेन्ट नहीं किया था। उसमें व्यापारी गुण नहीं थे इसलिए वो धनी नहीं बन पाया। 1880 में गरीबी में ड्रेक का देहांत हुआ।

पेनसिल्वानिया, अमरीका में पहले तेल के कुएं

उसके बाद लोगों ने तेल के लिए दुनिया के अन्य भागों में भी कुएं खोदने शुरू किए। जहां पर जमीन पर रिसकर तेल ऊपर नहीं आया था उन इलाकों में भी तेल खोज पाना सम्भव था।

जमीन के नीचे दबा तेल सेडिमेंटरी पत्थरों के छिद्रों में से रिसकर ऊपर सतह पर आने की कोशिश करता है। इसमें वो अक्सर सफल नहीं होता है। कभी-कभी कोई ऐसी तह आ जाती है जिसमें कोई छिद्र नहीं होता है। इससे तेल का ऊपर की ओर रिसना बंद हो जाता है और वह नीचे की तह में फंस जाता है।

अगर कोई ठोस पत्थर में से ड्रिल कर छिद्र वाले पत्थरों की तह तक पहुंच जाए तो फिर तेल को ऊपर लाया जा सकता है। कई बार छिद्र वाले पत्थरों में तेल नीचे पानी की तह के कारण बहुत दबाव पर होता है। जैसे ही ड्रिल ठोस पत्थर में छेद करती है वैसे ही तेल फव्वारे जैसे ऊपर सतह पर आता है। इसे 'गशर' कहते हैं।

पर जमीन की सतह से यह कैसे पता चले कि उसके नीचे छिद्रों वाले पत्थरों की तेल से भरी परत है? इसका उत्तर आसान नहीं था। पर लोगों ने पत्थरों की परतें बनने का गहराई से अध्ययन किया था। तेल कहां मिलेगा उन्हें इसका अच्छा अंदाज था।
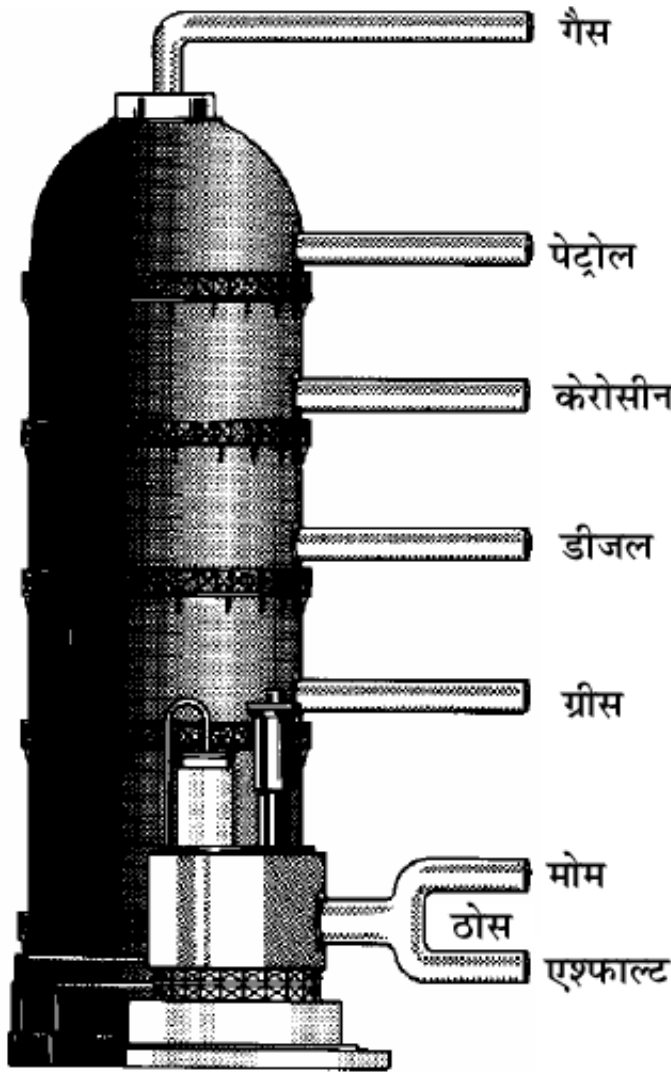
तेल मिलेगा या नहीं यह सिर्फ ड्रिल करने के बाद ही पता चल सकता था। हो सकता है कि कुआं सूखा हो। या फिर कुंए के आसपास के इलाके में और बहुत सारा तेल हो।

धीरे-धीरे ड्रिलिंग के बेहतर तरीकों का इजाद हुआ। विशेष तरीके के बरमों बने जिनके दांत गोल-गोल घूमकर पत्थर को काटते। इससे बने गहरे छेद को एक प्रकार की मिट्टी से भरा जाता है जिससे कि कटे पत्थरों को निकाला जा सके और तेल मिलने के पश्चात वो फव्वारे जैसे एकदम ऊपर न आए। फव्वारा निकलने से बहुत सारा तेल नष्ट हो जाता था।

आजकल दुनिया के कोने-कोने में 6 लाख से भी ज्यादा कुओं से तेल निकाला जा रहा है। यह सब 1859 में ड्रेक के कुंए के बाद शुरू हुए।

इन कुंओं से प्राप्त तेल के अनेकों उपयोग हैं। उसका शुद्धिकरण कर उसे अलग-अलग हाईड्रोकार्बन में विभक्त किया जाता है। इसका एक तरीका है 'डिस्टिलेशन' - इसमें तेल को गर्म करके उबाला जाता है और फिर उसमें से निकल रहे छोटे हाईड्रोकार्बन, फिर मध्यम हाईड्रोकार्बन और फिर बड़े हाईड्रोकार्बन को एकत्रित किया जाता है।

हाईड्रोकार्बन के बड़े परमाणु मुलायम और ठोस होते हैं और उन्हें सड़क बनाने के काम में लाया जाता है। मध्यम आकार के हाईड्रोकार्बन तरल होते हैं और उन्हें मशीनों के पुर्जों में ग्रीस-तेल लगाने के काम में लाया जाता है। सबसे छोटे परमाणु 'प्राकृतिक गैस' होते हैं और उन्हें दुनिया के हवाईजहाजों के ईंधन के लिए उपयोग किया जाता है।

पहली बार जब तेल के कुएं खुदे तो सबसे महत्वपूर्ण मध्यम आकार के हाईड्रोकार्बन निकले। वे बिल्कुल लालटेन में जलने वाले मिट्टी के तेल जैसे थे। उसके बाद कई दशकों तक अमरीका में ही नहीं पूरी दुनिया में लैम्प पेट्रोलियम पदार्थो से जलते रहे।

कुछ ऐसे भी हाईड्रोकार्बन परमाणु थे जो गैस से बड़े और केरोसीन से छोटे थे। यह परमाणु बहुत जल्दी वाष्पीकृत हो जाते थे। इतनी अधिक वाष्प बनने के कारण उनमें विस्फोट हो जाता था। उस समय इन परमाणुओं से निबटने के लिए उन्हें जला कर नष्ट कर दिया जाता था।

कुछ समय तक तो ऐसा लगने लगा कि पेट्रोलियम का बाजार जिस तेजी से आसमान पर चढ़ा था वो उतनी ही गति से ठंडा पड़ जाएगा। 1879 में अमरीकी आविष्कारक थौमस अल्वा ऍडीसन ने विद्युत बल्ब का इजाद किया था। यह इजाद पहले तेल का कुंआ खुदने के महज 20 वर्ष बाद हुआ था।

बिजली के बल्ब की रोशनी गैस-जेट या केरोसीन लैम्प के प्रकाश से कहीं बेहतर थी। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि बल्ब में कोई लौ नहीं थी जिससे कहीं आग लग सके - यानि वो कहीं अधिक सुरक्षित थी।

जैसे-जैसे विद्युत का उपयोग लोकप्रिय हुआ, बिजली के बल्बों की संख्या लगातार बढ़ती गई और गैस-जेट और केरोसीन के लैम्प का प्रचलन कम होता गया।

अब लोगों को पेट्रोल का क्या जरूरत थी? क्या तेल के कुंए बंद करना होगें?

4 तेल का नया महत्व

उस समय कुछ ऐसा घटा जिसका महत्व केरोसीन लैम्प से कहीं ज्यादा था। 1700 में पहला भाप का इंजन बना। स्टीम इंजन में आग से पानी गर्म होकर फिर उबलता है और उसकी भाप बनती है। क्योंकि आग इंजन के बाहर होती है इसलिए उसे इक्सटरनल-कम्बस्चन इंजन कहते हैं।

मान लें आपके पास के टंकी भर के तरल है जो बहुत जल्दी वाष्पीकृत होता है। उसके थोड़े से वाष्प को इंजन के अंदर ले जाकर हवा के साथ मिलएं। फिर एक छोटी सी चिंगारी से इस मिश्रण में विस्फोट करें। इस विस्फोट द्वारा पिस्टन गतिशील होगा। विस्फोट हुए मिश्रण को इंजन से बाहर फेंका जाएगा। फिर नई वाष्प को हवा के साथ मिलाया जाएगा और नया विस्फोट होगा।

इन निरंतर हो रहे विस्फोटों से पिस्टन लगातार गतिशील रहेगा और आगे-पीछे चलता रहता है। क्योंकि यह विस्फोट इंजन के अंदर होता है इसलिए इंजन की इस रचना को इंटरनल-कम्बस्चन इंजन कहा जाता है।

इंटरनल-कम्बस्चन इंजन का सबसे बड़ा लाभ है कि उसे झट से पल भर में शुरू किया जा सकता है। जबकि भाप का इंजन पानी उबलने तक शुरू नहीं होगा।

1860 में दुनिया के पहला व्यवहारिक इंटरनल-कम्बस्चन इंजन का इजाद फ्रेंच आविष्कारक इटने लेनोर ने किया। 1876 में जर्मन आविष्कारक निकोलस अगस्त ऑटो ने इसका बेहतर मॉडल बनाया। ऑटो द्वारा डिजायन किए इंटरनल-कम्बस्चन इंजन का संशोधित रूप हम आज भी इस्तेमाल कर रहे हैं।

अगर इस इंटरनल-कम्बस्चन इंजन को सही तरह से एक फ्रेम पर रखकर गाड़ी के पहियों से जोड़ा जाए तो वो पहियों को घुमाएगा। तब आपको गाड़ी खींचने के लिए घोड़े की जरूरत नहीं पड़ेगी। इस प्रकार बिना घोड़े की गाड़ी बन जाएगी। जल्द ही इस प्रकार की गाड़ी का नाम स्वःचलित 'ऑटोमोबाइल' पड़ा। इंग्लैंड में आज भी उन्हें 'कार' बुलाया जाता है।

सबसे पहली व्यवहारिक ऑटोमोबाइल को दो जर्मन इंजीनियर्स गौटिलेब डायमलर और कार्ल बेन्ट ने बनाया। शुरू में उनकी कीमत बहुत मंहगी थीं।

एक अमरीकी इंजिनियर हेनरी फोर्ड ने ऑटोमोबाइल्स के पुर्जों को बड़ी तादाद में इस तरह से बनाया जिससे उनसे आसानी से पूरी कार बनाई जा सके। फिर उसने एक असेम्बली लाइन स्थापित की जिसमें मजदूर एक ही स्थान पर खड़े होकर कार का कोई विशिष्ट पुर्जा फिट करता। हरेक मजदूर कार में बस एक पुर्जा फिट करता और फिर दूसरा मजदूर अगला काम करता। जैसे-जैसे ऑटोमोबाइल असेम्बली लाइन पर आगे बढ़ती उसमें उतने ही ज्यादा पुर्जे लगते जाते। असेम्बली लाइन के अंत में कार पूणतः तैयार होती।
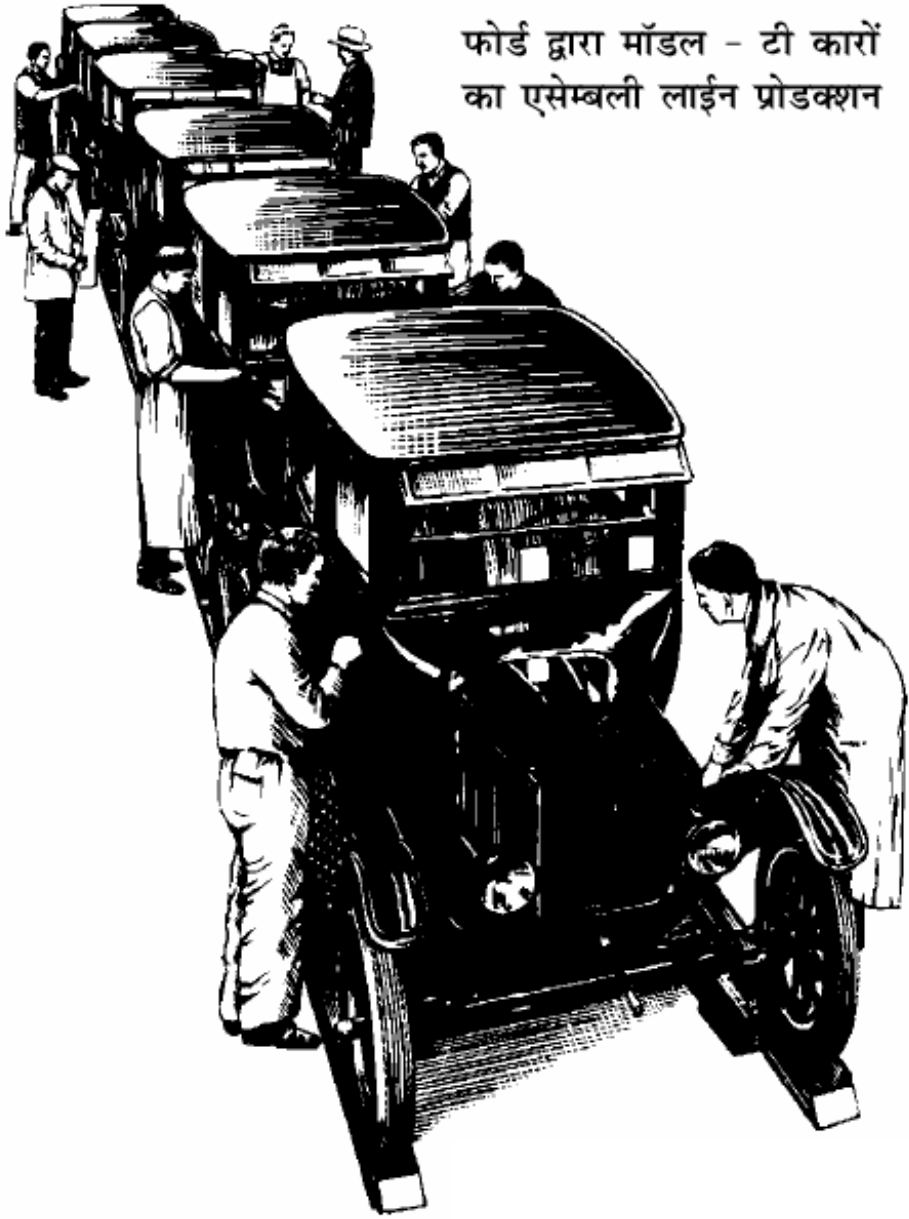
फोर्ड द्वारा मॉडल - टी कारों का एसेम्बली लाईन प्रोडक्शन

1913 तक हेनरी फोर्ड रोजाना हजारों गाड़ियों का निमार्ण कर रहा था और उनकी कीमत भी बहुत वाजिब थी। डिजायन में परिवर्तन के साथ गाड़ियां और बेहतर बनने लगीं। पहली कारों को स्टार्ट करने के लिए किसी व्यक्ति को इंजन को लोहे की एक बड़ी छड़ से क्रैंक करना पड़ता था। इसमें बहुत ताकत लगती थी और यह काम जोखिम से भरा था।

पर तब कार में एक बैटरी जोड़ दी गई। बैटरी रासायनिक प्रक्रिया से विद्युत पैदा करती थी और उसे इंजन स्टार्ट करने के लिए उपयोग किया जाता था। इस 'सेल्फ-स्टार्ट' कार को कोई भी आसानी से चला सकता था।

1920 में इस प्रकार की मोटर कारें काफी आम हो गईं। वो लाखों-करोड़ों की तादाद में बिकीं। ऐसा लगा जैसे हरेक अमरीकी कार खरीदने का इच्छुक हो। अन्य देशों में भी लोग कार खरीदने लगे।

यह कारें किस ईंधन पर चलती थीं? वो वाष्प क्या था जो हवा से मिलकर इंजन में विस्फोट करता था? पेट्रोलियम से मिलने वाले हाईड्रोकार्बन की क्या स्थिति

थी? मध्यम आकार के केरोसीन के परमाणुओं से काम नहीं चला – क्योंकि उनकी वाष्प जल्दी नहीं बनती थी। लैम्प में अगर वाष्पीकरण धीरे हो तो अच्छी बात है। परन्तु इंटर्नल कम्बस्चन इंजन तो विस्फोट पर ही निर्भर था।

उसके लिए केरोसीन से छोटे परमाणुओं की जरूरत थी। इसके लिए बस उन्हीं छोटे परमाणुओं की जरूरत थी जिन्हें तेल कम्पनी जलाकर नष्ट कर रही थीं। इन छोटे परमाणुओं में 'गैसोलीन' थी क्योंकि वे बहुत जल्दी गैस या वेपर में बदल जाते थे। कभी-कभी 'गैसोलीन' को संक्षिप्त में 'गैस' भी कहते हैं। परन्तु यह 'गैस' दरअसल में एक द्रव्य होती है – गैस नहीं। ब्रिटेन में इसे पेट्रोल कहते हैं – जो पेट्रोलियम का संक्षिप्त रूप है। असल में वो पेट्रोलियम का एक छोटा सा हिस्सा है।

राईट बंधु किटी हौक, उत्तरी कैरोलीना, १९०३
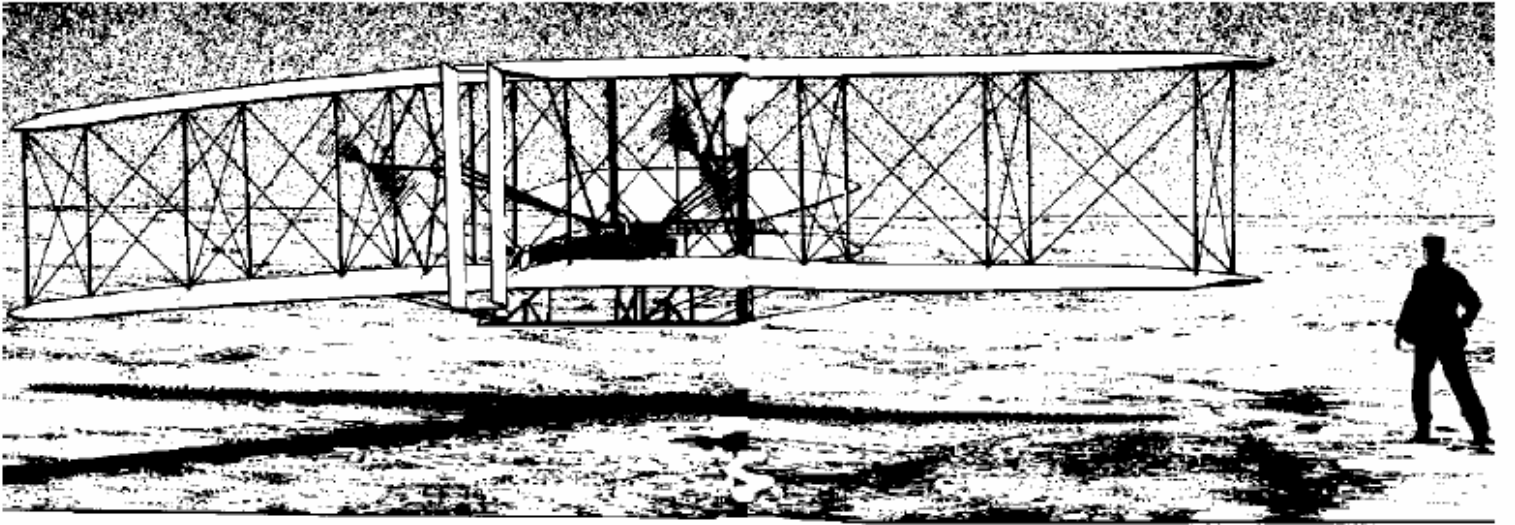
1903 में विल्बर और ओरिविल रॉइट भाइयों ने हवाईजहाज का इजाद किया। ये हवाईजहाज इंटर्नल कम्बस्चन इंजनों से चलते थे। इससे गैस या पेट्रोल की और मांग बढ़ी। 1892 में जर्मन इंजिनियर रुडौल्फ डीजल ने एक अन्य इंटर्नल कम्बस्चन इंजन का इजाद किया जो सरल था और जिसमें कम ईंधन खर्च होता था। उसमें पेट्रोल से बड़े परमाणुओं का उपयोग होता था और उसे जलाने के लिए चिंगारी की जरूरत भी नहीं थी। इसमें मिश्रण को एक बहुत छोटे से स्थान में दबाया जाता था। दबान से ईंधन और हवा का मिश्रण गर्म होकर उसमें विस्फोट होता था।

डीजल के इंजन साधारण इंटर्नल कम्बस्चन इंजन से भारी होते थे और वे बड़े वाहनों जैसे ट्रकों, बसों और जहाजों के लिए उपयुक्त थे।

1930 तक इंटर्नल कम्बस्चन इंजनों की तादाद बढ़ने से अब पेट्रोलियम, कोयले की अपेक्षा ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया था। तेल कम्पनियों ने पेट्रोलियम का इस तरह शुद्धिकरण करना आरंभ जिससे उसमें से ज्यादा से ज्यादा पेट्रोल और डीजल निकले।

पेट्रोल और डीजल निकालने के बाद भी तेल के तमाम हाईड्रोकार्बन अभी भी बच जाते थे।

कुछ तरल जिनमें हाईड्रोकार्बन के लम्बे परमाणु थे आसानी से जलते, परन्तु अब केरोसीन के लैम्पों का चलन बंद हो चुका था। फिर भी इन द्रव्यों को अगर प्रकाश के लिए नहीं तो ऊष्मा पैदा करने के लिए तो जलाया ही जा सकता था। इन ईंधन-तेल से ठंडे मुल्कों में घरों को गर्म क्यों न किया जाए?

1920 के दशक में लोग घरों को गर्म करने के लिए कोयले का अधिकाधिक उपयोग कर रहे थे। परन्तु ईंधन-तेल का उपयोग कोयले की अपेक्षा आसान था।

कोयले को गाड़ी में लाना पड़ता और फिर उसे नीचे कोठरी में संजो के रखना पड़ता था। यह गंदा काम था। फिर कोयले को भट्टी में झोंकना पड़ता, पर उससे पहले भट्टी को कागज और लकड़ी जलाकर गर्म करना पड़ता था। अच्छी तरह जलने के लिए इस ईंधन को हिलाना-डुलाना पड़ता था। और अंत में राख हटानी पड़ती थी।

ईंधन-तेल को आसानी से जमीन के नीचे दबी टंकी में स्टोर किया जा सकता था। उसे स्वचालित तरीके से सीधे भट्टी में जलाया जा सकता था। तापमान को थरमोस्टैट से संचालित किया जा सकता था। इन सुविधाओं के कारण बहुत से लोगों ने कोयले की बजाए ईंधन-तेल का उपयोग शुरू किया।

प्राकृतिक गैस के छोटे परमाणुओं से चूल्हे पर खाना पकाया जा सकता था और घरों को गर्म भी किया जा सकता था। कुछ मामलों में प्राकृतिक गैस तरल ईंधन-तेल से ज्यादा सुविधाजनक थी। आसानी के साथ-साथ उसमें कोई गंदगी नहीं होती थी।

पेट्रोलियम के बचे हुए हाईड्रोकार्बन का भी केमिस्टों ने अच्छा सदुपयोग किया। उन्होंने उनके परमाणुओं की संरचना बदलकर उनसे प्लास्टिक, रेशे, दवाईयां, रंग और अन्य अनेकों उपयोगी चीजें बनाईं।

5 तेल का भविष्य

एक महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर अभी बाकी था। जैसे-जैसे पेट्रोलियम के अवयवों की खपत बढ़ने लगी एक प्रश्न सबको सताने लगा - तेल कब तक मिलेगा?

1930 में लोगों को लगा कि तेल कुछ समय बाद समाप्त हो जाएगा। परन्तु तेल कम्पनियों ने सभी स्थानों पर तेल के नए कुंओं की खोज की। अब वे खोजने, ड्रिलिंग आदि ने नए तरीकों से अवगत थे।

दुनिया के प्रमुख तेल कुएं
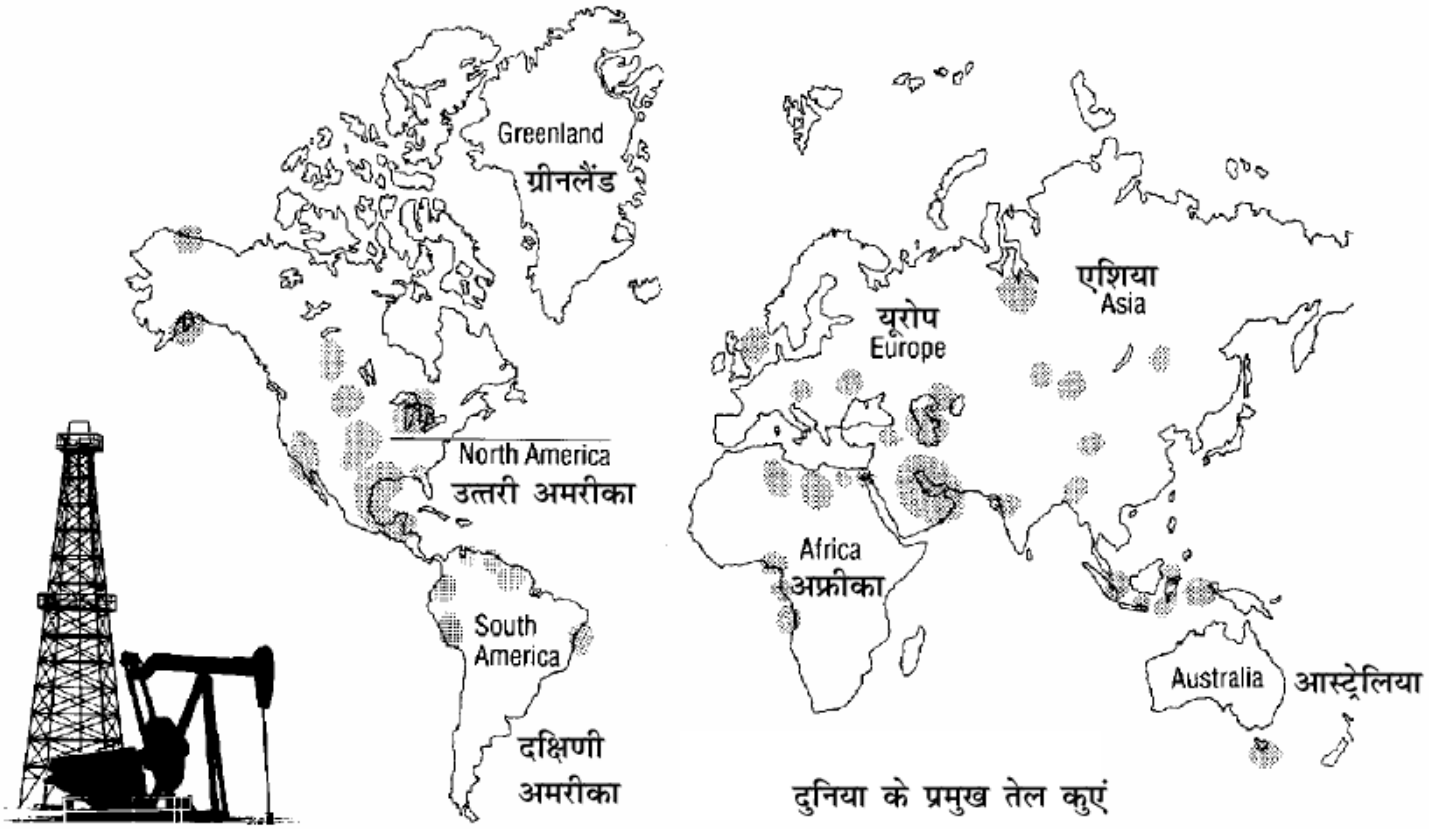
1940 में उन्हें मध्य-पूर्व में तेल के नए स्रोत मिले। यह वही इलाका था जहां की प्राचीन सभ्यताओं ने जमीन पर रिसकर आने वाले पिच की खोज की थी।

ईरान की खाड़ी (परशियन गल्फ) के पास जमीन के अंदर तेल के विशाल भंडार थे। इस इलाके में कुल मिलाकर बाकी दुनिया के बराबर तेल के भंडार थे। इससे दुनिया में तेल की उपलब्धता तुरन्त दुगनी हो गई।

करीब 25 सालों तक सस्ता तेल भरपूर मात्रा में उपलब्ध था। अमरीका में भी तेल के भंडार उपलब्ध थे। परन्तु उसने उन्हें भविष्य के लिए संजों कर रखा और विदेशों से तेल खरीदता रहा। यूरोप और जापान के पास बिल्कुल तेल नहीं था। इसलिए वो अन्य देशों से सस्ता और आरामदेह तेल खरीदते रहे।

शुरू में तो स्थिति सामान्य रही परन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद मध्य-पूर्व के बहुत से तेल उत्पादक देशों पर यूरोपीय देशों का कब्जा हो गया। यहां पर अब यूरोपीय और अमरीकी ही नए कुंए खोदते, उनके मालिक होते और उनसे तेल निकालते।

पर उसके बाद मध्य-पूर्व के देश स्वतंत्र हुए। वो अपने तेल के कुंओं को खुद नियंत्रित करके, तेल की कीमत खुद तय करना चाहते थे। 1960 में मध्य-पूर्व के तेल उत्पादक देशों ने एक गुट बनाया 'ओपेक' (ऑर्गिनाइजेशन ऑफ पेट्रोलियम ऍक्सपोर्टिंग कंट्रीज)। वो एक-दूसरे के साथ सलाह-मशविरा करके तेल की कीमत को खुद तय करने लगे। कुछ ही समय में ओपेक एक बेहद शक्तिशाली गुट बन

गया। विश्व के औद्योगिक देशों को तेल की अथाह जरूरत थी। इन देशों में हर साल तेल की खपत में इजाफा हो रहा था। वहां के कारखाने, कारें, ट्रक, बसें और हवाईजहाज सभी तेल पर चलते थे। दुनिया की अर्थव्यवस्था को डगमगाए बिना इस लगातार बढ़ती खपत को कम करना असम्भव था।

पर द्वितीय महायुद्ध के बाद तेल की खपत को कम करना जरूरी हो गया। तेल खत्म हो रहा था और उसके नए भंडार लुप्त हो रहे थे।
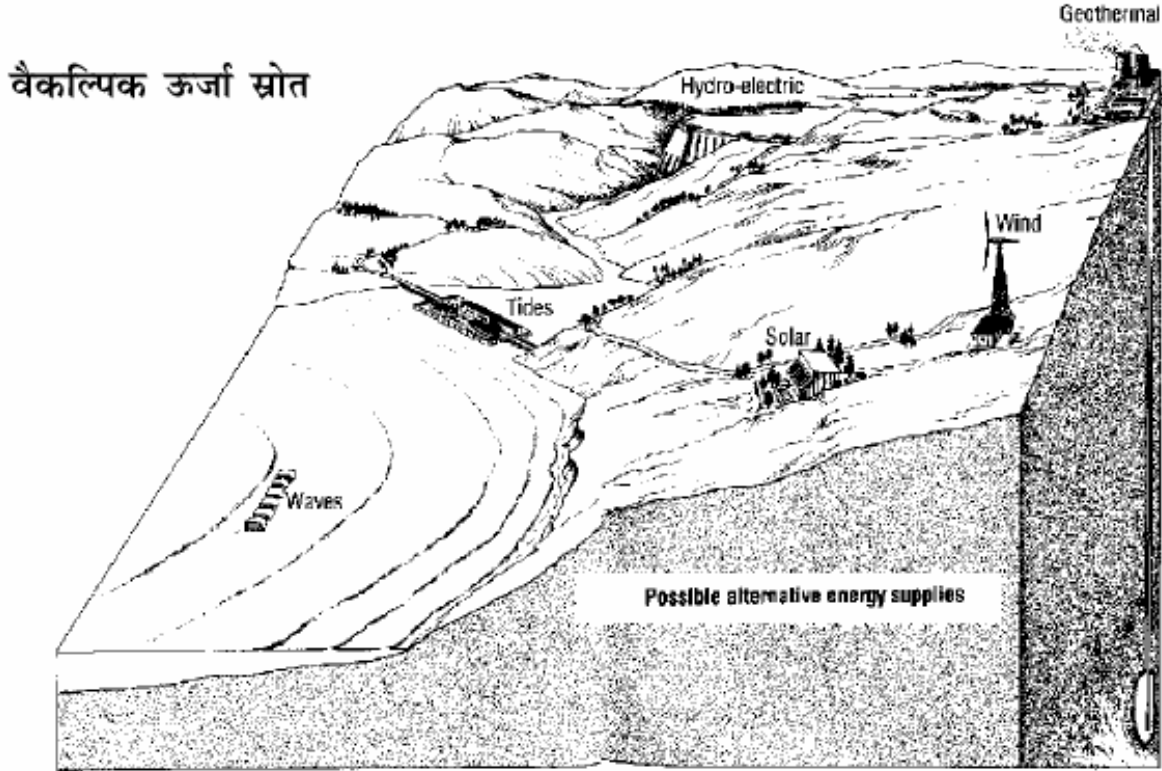
कुछ लोगों के अनुसार दुनिया के सभी तेल कुंओं में कुल मिलाकर 600 हजार मिलियन करोड़ बैरल तेल होगा। यह बहुत अधिक तेल की मात्रा है। परन्तु हर साल दुनिया 20 हजार मिलियन करोड़ बैरल तेल का उपयोग करती है। इस दर से तेल केवल 30 साल तक ही चलेगा।

साथ में तेल के और नए कुंए मिलने की सम्भावना भी है। 1960 में अलास्का में एक नया तेल का कुंआ मिला। ब्रिटेन के नार्थ–सी में भी तेल पाया गया। दक्षिणी मेक्सिको में भी अपार तेल मिलने की सम्भावना है।

अगर हम इस सब स्रोतों को भी जोड़ें तब भी तेल 50 साल से ज्यादा नहीं चलेगा।

इतना अवश्य है कि तेल के पुराने स्रोत अब निश्चित तौर पर सूख रहे हैं। पेनसिल्वेनिया में ड्रेक द्वारा पहला कुंआ खोदे जाने के बाद लगभग सौ सालों तक अमरीका दुनिया का सबसे बड़ा तेल उत्पादक देश था। पेनसिल्वेनिया के कुंए अब सूख चुके हैं परन्तु टेक्सस में तेल के नए और विशाल भंडार मिले हैं।

अब धीरे-धीरे करके अमरीका के सभी तेल के कुएं सूख रहे हैं। वहां 1970 में उत्पादन अपनी चरम सीमा पर था जो अब साल-दर-साल कम हो रहा है।

1969 तक अमरीका अपने खुद के खर्चे लायक तेल का उत्पादन करता था। पर उसके बाद से वो लगातार तेल का आयात कर रहा है क्योंकि उसका खुद का तेल उत्पादन घट रहा है और अमरीकी लोग और अधिक तेल उपयोग कर रहे हैं। 1980 में अमरीका अपना आधा तेल विदेशों से आयात कर रहा था।

जब विदेशों से तेल आना बंद हो जाता है तो अमरीका की मुश्किलें बढ़ जाती हैं। वहां कारों के लिए पेट्रोल और ट्रकों और खेतों पर काम करने वाली मशीनों के लिए डीजल नहीं मिलता है। तब जाड़े के मौसम में घर गर्म करने के लिए ईंधन भी नहीं मिलता है।

1973 में इजराइल के साथ राजनैतिक झगड़े के कारण मध्य-पूर्वी देशों ने अमरीका और यूरोप के देशों को कई महीनों तक तेल नहीं भेजा। फिर 1979 में ईरान - जो एक बहुत बड़ा तेल उत्पादक देश था वहां क्रांति आई। इससे समस्याएं और बढ़ीं।

ओपेक के देशों के अनुसार तेल का उत्पादन अनंत काल तक नहीं चलेगा। जब तक सस्ता तेल उपलब्ध है तब तक लोग ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर शोध नहीं करेंगे। सारे देश बस तब तक तेल फूंकेंगे जब तक वो समाप्त न हो जाए।

अगर तेल की कीमतें बढ़ा दी जाएं और उसके उत्पादन पर सीमा लगा दी जाए तो लोग तेल को सोच-समझ कर इस्तेमाल करेंगे। तब वो तेल का उपयोग कम करेंगे और वो लम्बे समय तक चलेगा। और अगर तेल मंहगा होगा और उसका मिलना मुश्किल होगा तो सभी देश वैकल्पिक ऊर्जा को मेहनत करके खोजेंगे।

1973 से ओपेक देश लगातार तेल की कीमतें बढ़ा रहे हैं और इससे बाकी सभी चीजों की कीमतें भी बढ़ी हैं। आज पूरी दुनिया के सामने ऊर्जा का संकट मुंह बाए खड़ा है और उन्हें इससे मिल कर निबटना चाहिए।

इसके बारे में क्या किया जा सकता है?

ऊर्जा के नए स्रोतों को खोजने के लिए हमें कुछ समय चाहिए होगा। इस बीच हमें तेल का उपभोग कम-से-कम करना चाहिए। हमें फिजूलखर्ची बंद करनी चाहिए।

लोगों को छोटी कारें खरीदनी चाहिए जो उतने ही पेट्रोल में ज्यादा दूरी तय कर सकें। तीन-चार लोगों को मिलकर एक कार में अपने गंतव्य तक जाना चाहिए। लोगों को सार्वजनिक ट्रांसपोर्ट का उपयोग करना चाहिए। उन्हें ज्यादा पैदल चलना चाहिए। घरों को इंस्यूलेट करना चाहिए। छुट्टियों में दूर-दराज न जाकर उन्हें घर के आसपास ही कहीं मनोरंजन के लिए जाना चाहिए।

जनसंख्या पर लगाम लगाने से भी ईंधन में बचत होगी। सभी लोग ऊर्जा

उपयोग करते हैं और जितने ज्यादा लोग होंगे उतनी ही अधिक ऊर्जा खर्च होगी। सन 2000 तक विश्व की आबादी 7 बिलियन के करीब होगी। आबादी की गति को कम करने के लिए हमें हर कदम उठाना चाहिए।

ऊर्जा के संरक्षण के लिए विश्व में शांति का होना जरूरी है। युद्ध में बहुत बड़े पैमाने पर ऊर्जा खर्च होती है। फौज, वायु-सेना और जल-सेना अगर लड़ाई के मैदान में न हों तो भी उन पर अथाह ऊर्जा खर्च होती है।

तेल के कुंए आरामदेह और सस्ते भले ही हों पर उनके अलावा भी ऊर्जा के अन्य स्रोत हैं। उदाहरण के लिए शेल-पत्थर जिससे एक शताब्दी पहले केरोसीन निकाला गया था। हम उसका दुबारा उपयोग कर सकते हैं।

शेल को खोदना मुश्किल होता है और उसमें से हाईड्रोकार्बन निकालना और भी कठिन होता है। फिर जो शेल बचता है उसे भी ठिकाने लगाना पड़ता है। पर अगर हम इन समस्याओं का हल खोज पाए तो शेल से हमें तेल का एक विशाल स्रोत मिलेगा। कैनाडा की टार-रेत से भी हम तेल प्राप्त कर सकते हैं।

अगर हम इन स्रोतों का दोहन कर पाए तो शायद तेल के भंडार 100 साल तक चलें।

हम कोयले का दुबारा उपयोग शुरू कर सकते हैं। कोल के भंडार तेल की अपेक्षा कहीं ज्यादा हैं। कई स्थानों पर हम तेल की जगह कोयला उपयोग कर सकते हैं। कोयले को रासायनिक प्रक्रियों द्वारा एक तरल ईंधन में बदला जा सकता है। कोयला हमारी ऊर्जा की जरूरतों को कई शताब्दियों तक पूरा कर सकता है।

एक दिक्कत अवश्य है। तेल और कोयले के जलने से वातावरण प्रदूषित होता है। उनके धुंए में बहुत सारे हानिकारक रासायन होते हैं।

अगर इन अशुद्धियों को निकाल भी दिया जाए तो भी तेल और कोयला कार्बन-डाईआक्साइड गैस पैदा करते हैं जो हवा में इकट्ठी होती जाती है। कार्बन-डाईआक्साइड सूर्य की ऊष्मा को सोखती है और उससे पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। हवा में अगर कार्बन-डाईआक्साइड की मात्रा थोड़ी भी बढ़ेगी तो उससे पृथ्वी का मौसम बदल जाएगा और उससे तमाम बड़ी समस्याएं पैदा होंगी।

इसलिए हमें ऊर्जा के ऐसे वैकल्पिक स्रोत्रों को खोजना चाहिए जो तेल और कोयले जैसे हानिकारक न हों। हम पवन-ऊर्जा, नदियों में पानी के बहाव, जंगल के पेड़ों, महासागरों की लहरों और पृथ्वी के गर्भ में छिपी अपार ऊष्मा का उपयोग भी कर सकते हैं।

इन सभी ऊर्जा के स्रोतों से भी हमारे जरूरतें शायद पूरी न हों। पर अगर हमने इनका उचित दोहन किया तो हमारा काफी समय तक काम चलेगा और तब तक शायद हमें ऊर्जा का कोई बेहतर स्रोत मिल जाए।

हम नई ऊर्जा के स्रोतों का भी उपयोग कर सकते हैं। हम यूरेनियम की

आणविक ऊर्जा का उपयोग कर रहे हैं पर कुछ लोगों को उसमें बहुत खतरा नजर आता है। उसके पूरी पृथ्वी पर विकीरण (रेडियेशन) फैल सकता है। एक नई प्रकार की ऊर्जा हाईड्रोजन फ्यूजन से प्राप्त की जा सकती है। यह आणविक ऊर्जा से भी सस्ती और सुरक्षित होगी। पर यह ऊर्जा अभी तक कोई व्यवहारिक रूप नहीं ले पाई है।

एक अन्य स्रोत हमारा सूर्य है। सूर्य की रोशनी से मिली ऊर्जा से हम हमेशा के लिए अपनी ऊर्जा की मांग को पूरा कर सकते हैं। इसके लिए हमें सूर्य की रोशनी को इकट्ठा करके उसका समुचित इस्तेमाल सीखना होगा।

यह भी सम्भव है कि हम अंतरिक्ष में सूर्य की रोशनी एकत्रित करने वाले स्टेशन बनाएं जो लगातार पृथ्वी की परिक्रमा करते रहें। यह स्टेशन एकत्रित ऊर्जा को लघु रेडियो तरंगों यानि 'माइक्रोवेव्ज' के रूप में पृथ्वी पर भेज पाएंगे। इन 'माइक्रोवेव्ज' को फिर विद्युत में बदला जा सकेगा।

हम तेल की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए काफी कुछ कर सकते हैं। इसके लिए हमें गहराई से सोच-विचार करना होगा। इसके लिए दुनिया के सभी देशों को आपस में एक-दूसरे का सहयोग करना होगा और सभी को मेहनत और लगन से काम करना होगा।

समाप्त 18-4-2014